मेरा युग आपका युग भी है। इस युग में एक ओर जहां महामानव बापू की पावन तपस्या फलीभूत हुई तो दूसरी ओर मानव पशुओं का नृशंस ताण्डव भी इसकी ही छाती पर हुआ। उच्चता और निम्नता दोनों की ही स्वाभाविक आकृतियों ने युग की खिड़की से झांककर देखा है, कवि की आंखें उन्हें सही तौर से पहचान सकी हैं, या नहीं, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे।

प्रवेश

मेरा युग आपका युग भी है। इस युग में एक ओर जहां महामानव बापू की पावन तपस्या फलीभूत हुई तो दूसरी ओर मानव-पशुओं का नृशंस ताण्डव भी इसकी ही छाती पर हुआ। चरमता और निम्नता दोनों की ही स्वाभाविक आकृतियों ने युग की खिड़की से झांककर देखा है, कवि की आंखें उन्हें सही तौर से पहचान सकी हैं या नहीं, इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे।

—कन्हैयालाल सेठिया

अनुक्रम

मेरा युग

यह मेरा युग
इस से बढ़कर
क्या हुआ भूत में युग कोई ?
यह मेरा युग
इस से बढ़कर
क्या और कभी युग आयेगा ?
इस युग में
इस धरती ऊपर
वे मानव आये औ अम्बर
जिन से कोई सुर दानव
क्या ले भी सकते हैं टक्कर ?
इस युग में
ऐसी घटनाएँ
हैं घटित हुई जिन पर सहसा
विश्वास करेगी आगे की
पीढ़ी भी इसमें संशय है !
इस युग में ब्रिटिश सिंहासन का
एडवर्ड आठवाँ अधिकारी
जो छोड़ चला नारी पीछे
वह राज्य नहीं जिसमें होता

मेरा युग

यह मेरा युग
इस से बढ़कर
क्या हुआ भूत में युग कोई ?
यह मेरा युग
इस से बढ़कर
क्या और कभी युग आयेगा ?
इस युग में
इस धरती ऊपर
वे मानव आये ओ अम्बर
जिन से कोई सुर दानव
क्या ले भी सकते हैं टक्कर ?
इस युग में
ऐसी घटनाएँ
हैं घटित हुई जिन पर सहसा
विश्वास करेगी आगे की
पीढ़ी भी इसमें संशय है !
इस युग में ब्रिटिश सिंहासन का
एडवर्ड आठवाँ अधिकारी
जो छोड़ चला नारी पीछे
वह राज्य नहीं जिसमें होता

था अस्त कभी दिनकर पल भर—
वह त्याग कि जिसने दुनिया को
फिर नए सिरे से साबित कर
दिखलाया सत जो शिव सुन्दर
कि प्रेम मुहब्बत के पीछे
किस तह तक मिट्टी उठ सकती
है इसका कुछ अन्दाज नहीं
इस युग में आया हर हिटलर
जिनके बूटों की क्रूर धमक
से धरती थर्रा उठती थी
जो छोड़ गया इतिहासों के
पन्नों को शोणित में रंग कर
जिसकी दुर्दमनीय पिपासा के
इंगित पर आदम बेटों ने
वह युद्ध रचा अपने हाथों
जिसकी रोमांचक गाथा सुन
खूंख्वार प्रलय कतरायेगा।
उसका ही बिलकुल समकक्षी
वह लोह पुरुष जोसेफ स्तालिन
जिसके फौलादी पंजों ने
संसार-विजेता फ्यूहरर की
गर्वीली गर्दन तोड़ी थी
उस दूर सोवियत धरती पर
इक इज्म नया पनपा जिसने
जीवन के चालू ढर्रों को
दी एक चुनौती बदलो तुम
कर रोटी को ही केन्द्र बिन्दु
यह वाद बढ़ा आगे लेकिन

मानव के अन्तर्द्वन्द्वों को
असमर्थ रहा सुलझाने में
यदि भूख वासना कर सकतीं
परितृप्त मानवी इच्छाएँ
तो पशु बन मानव जी लेता
कुछ आनाकानी किये बिना ।
यह एक नजर थी पश्चिम की
पूरब में पीले जापानी
ले उगते सूरज का झण्डा
थे टूटे पड़े टिड्डी दल से
उन देशों पर
जिनकी गर्दन
मुद्दत से छटपट करती थी
पश्चिम के ख़ूनी जबड़ों में ।
और दिया नारा उन ने
'एशिया ऑफ एशियन्स'
यह एक बहाना था केवल
पूरब की शोषित जनता को
कुछ काल भुलावा देने का
इस नारे के पीछे जीवित
साम्राज्यवाद की लिप्सा थी
और यही था घुन अन्दर
जिसने जापानी विजयों को
ढहकाया आनन-फानन में
बालू के बने घरौंदों-सा
सम्राट हिरोहित की फौजें
भारत की हद तक आ पहुँचीं ।
वह कलकत्ते का महानगर

पूरब में जिसकी सानी का
औद्योगिक कोई शहर नहीं
पटसन की जिसकी मीलों की
चिमनी का भारी आकर्षण
बन गया एक आमन्त्रण-सा
उन जापानी बमगारों को।

उस काल पड़ा बंगाले में
दुष्काल कि जिसकी याद किये
अन्तर की धड़कन रुक जाती,
उस शस्य श्यामला धरती के
चालीस लाख बेटे-बेटी
मर गए झोपड़ों, गलियों में
ज्यों मोरी के कीड़े किलबिल,
यह नहीं प्रकृति का कोप हुआ
सूखा न पड़ा, ओले न गिरे
था अन्न भरा गोदामों में
पर जिनके तालों की चाबी
थी हाथों में, थी जेबों में
जिनको थी चाँदी की ममता
मिट्टी के पुतलों से ज्यादा।
पर आह इन्हीं मरभुक्खों की
बस हिरोशिमा पर जा टूटी
अम्बर से एटम बम बनकर।
कर थामे अन्धे मानव का
चुपचाप दलाल विज्ञान गया
ले उसको क्षय के दरवाजे।
विद्वान् मनीषी आइन्स्टीन

इस युग के वर वैज्ञानिक ने
जो राज़ जगत पर एटम का
खोला था, अपनी बुद्धि पर
पछताता होगा अब कहकर
यह हाय हुई क्या नादानी ?
तम में भी राह दिखाई दे
था सोच बनाया दीपक को
जिस कुम्भकार ने मर-पचकर
उसकी ही आँखों के आगे
उस दीपक से कोई पागल
घर फूंके ऐसी हालत में
कब तक न धुनेगा सिर अपना
वह दीन बेचारा निर्माता !
इस युग की अब तक जड़ता ही
मैं चित्रित करता बढ़ आया
अब लौट चलूँ उस ओर जहाँ
युग का आलोक चमकता है।
इस युग में आया एकपुरुष
पा जिसको अपनी काया में
मानव की संज्ञा धन्य हुई
छू जिसके पावन चरणों को
यह धरती स्वर्ग अनन्य हुई
जो लिये अहिंसा अस्त्र चला
हिंसा के गढ़ को जय करने
जो बढ़ा प्रेम की गंगा ले
कटु कलह गरल को लय करने,
सुनते हैं भूप भगीरथ था
जो गंगाजी को लाया था

यह सोच कि छू कर जल निर्मल
इसके पुरखे तर जायेंगे
यह नया भगीरथ गांधी था
जो अपने नन्हे नयनों में
'वसुधैव कुटुम्बकम्' का व्रत ले
भर स्नेह सुरसरि ले आया
जगती की जलती छाती पर।
सन् बयालीस में वह बोला
'क्विट इंडिया'
भारत को छोड़ो अंग्रेज़ो
उसकी इस दुर्बल वाणी में
चालीस कोटि की बोली का
बल है शासक ने मान लिया।
गोली न चली, तोपें न चलीं
बस बाँध बोरिया बसना सब
सन सैंतालीस को अमर बना
चुपचाप चले अंग्रेज गये
यह चमत्कार था बापू का।
यह यन्त्रवाद पर पश्चिम के
आध्यात्मिक पूरब की जय थी।

तल्लीन इधर तो थी दिल्ली
जब खुशियों में आज़ादी की
वह राष्ट्रपिता जिसके बल पर
यह महामुक्ति का दिन आया
उस नोआखाली में बैठा
था कोमल हाथों सहलाता
उन मानवता के जख्मों को

जो जाहिलपन बेरहमी की
खामोश दास्तां कहते थे।
इस गैर मुनासिव हालत में
थी इसको इतनी फुरसत कव
जो शामिल होता जलसों में।
''बस कर्म किया निस्पृह वनकर
कव फल की उसनें इच्छा की ?
इस युग में आये रवि ठाकुर
जो विश्व-विजेता कवि गायक
गीतों से जिसके ध्वनित हुई
भू, सात समन्दर की लहरें
मानव में जो कुछ सुन्दर है
उसको कव बांध भला पायी
देशों की कृत्रिम सीमाएँ ?
वे शान्तिनिकेतन छोड़ गये
जो वोधिवृक्ष-सा फैलाता
अव भी संस्कृति की शाखाएँ
इस युग में आये जिन्ना भी
जिननें अपनें ही हाथों से
अपनी ही माँ की छाती के
हँस-हँसकर टुकड़े कर डाले
यह ऐसी भारी दुर्घटना
कि जिसकी कहीं मिसाल नहीं
फिर आवादी की अदल-वदल
सूरज औ' चाँद-सितारों नें
निश्चय न कभी देखी होगी
दर्दनाक इतनी हलचल।
यह राजनीति के ओटे में

बुद्धि की महज दिवाला था
मजहब के झूठे नारों ने
मानव का खून उबाला था
घर-बार छुटे पुश्तैनी सब
चेतन की जड़ता खुल खेली
इस मेरे युग की गाथा में
यह एक कड़ी सबसे मैली।
जो जुल्म हुए माँ-बहनों पर
है कौन बेहया दुहराए
उन शर्मनाक करतूतों को ?
यह इतनी बेजा हरकत थी
कि शक है इसमें कर सकते
क्या पशु भी इतनी बदफैली ?
यह अस्वाभाविक यौन भूख
थी एक उदाहरण भर इसका
कि कितनी थोथी होती है
परतन्त्र कौम की नैतिकता ?
यह कहना होगा बहुत गलत
कि इसमें केवल हाथ रहा
बदमाश कमीनों गुण्डों का
थे इसके पीछे सचमुच में
बापू के शब्दों में सारे
चालीस करोड़ गुण्डे गुण्डी
और हुआ सम्भव तब ही
यह काम जघन्य घृणित गर्हित
इतने भीषण पैमाने पर।
फिर बापू जैसे देव-पुरुष
कब देख भला यह सकते थे

निर्बल-से निष्क्रिय दर्शक बन
युग की इस चरम गिरावट को।
बापू ने कठिन प्रतिज्ञा ली
मैं तब तक अनशन करता हूँ
जब तक न लौटकर आयेगी
मानव की संज्ञा मानव में।

यह आत्मा की ललकार प्रबल
थी किसकी ताकत कर सकता
जो कालपुरुष की अवहेला ?
अपने पैशाचिक कृत्यों पर
गुमराहों ने सन्ताप किया
बापू, तुम अन्न ग्रहण कर लो
सचमुच में हमने पाप किया।
यों देख दिलों को पछताते
करुणार्द्र पिता का दिल डोला
दे उन्हें चितौनी बापू ने
छह दिन का रक्खा व्रत खोला।
पर हुए धरा पर पापों को
भगवान क्षमा कब कर पाये ?
थी उन्हें श्रेष्ठतम बलि इच्छित
तब उसके आगे जोर कहाँ ?

वह तीस जनवरी की सन्ध्या
जब मानवता का प्रिय सूरज
काँपते-से डगमग पग धरकर
आता था प्रभु के पूजन को
तब एक निर्दयी हत्यारा

कण-कण अब तेरा पावन है
तू स्वर्गों में सरनाम हुई ।

जो मिली मुल्क को हमदर्दी
अपने इस कौमी संकट में
है मिलना उसका जोड़ कठिन
इस दुनिया की तारीखों में ।
दी श्रद्धांजलियाँ आँखों में
आँसू भरकर सम्राटों ने
जिसके चरणों की रज आगे
है तुच्छ जगत की सुषमाएँ
उठ ऐसा एक फकीर गया ।
श्रद्धा के अगणित सुमनों में
जो सुमन सजा सबसे सुन्दर
वह था बर्नार्ड शा के कर से
"है खतरनाक भी कितना यह
सीमा से अधिक भला होना"
इस एक पुरुष के अन्दर ही
मेरे युग का चरमत्व हुआ
उसने न किया हो विश्लेषण
ऐसा न धरा पर तत्त्व रहा,
अब शेष नहीं कुछ कहने को
ओ मुग्ध लेखनी रुक जा री
जय कहकर वीर जवाहर की
युग के इस अन्तिम नाहर की ।

इस महाकाल की पुस्तक में
जो मेरे युग का पन्ना यह

चिरकाल रहेगा आकर्षक
चिरकाल रहेगा अचरजमय
जो एक सबक इस पन्ने पर
यदि उससे चाहे मानवता
तो सीख सदा को सकती है
जीवन के सही तरीकों को।

नोआखाली

नोआखाली, नोआखाली
गूँजी धरा, गगन भी गूँजा
नोआखाली, नोआखाली ।
जान गया जग
एक मिनट में
बंग देश के एक रोम को
और विश्व ने सुना
खा रही—
एक देश की कौम कौम को,
ओढ़ धर्म का ढोंग अचानक
फिर मानव की पशुता जागी
इतिहासों में सोयी थी जो
फिर जग के आँगन में नाची
और हो गया उसके आगे
नादिरशाही मुखड़ा पीला
टपक चला आँसू भी करता
तैमूरी गालों को गीला,
किन्तु सुनी है तुमने भी तो

एक कहावत अंग्रेज़ी में
'हिस्ट्री रिपीट्स इट सेल्फ'
(इतिहास सदा दुहराता निजको)
और इसी को सत्य बनाने,
कुछ मजहब के दीन दीवाने
लपलप करती ले तलवारें
चले निकलकर लहू वहाने
किनका ? जिनके साथ युगों से
रहते आये, वसते आये
रोते आये, हँसते आये
एक गाँव के, एक गली के
एक पेड़ के, एक फली के
काका, काकी, भाभी, भाई
मामा, मामी, मौसी, ताई
जिनका नाता, जिनका रिश्ता
(पर विकार को जीत न पाये)
और उसी के वशीभूत हो
पलक मारते भूल गये वे
अपना सारा भाईचारा !

नन्हे-नन्हे कोमल वच्चे
वय के कच्चे
उन्हें उतारा घाट मौत के
काट-काटकर
जैसे कटते मूली-गाजर,
अवला नारी
उसकी लज्जा, उसकी अस्मत
गई उतारी, बीच वजारों

और हवा में गूंज गया फिर
'पाकिस्तान जिन्दाबाद !'

दहल गया सुन
खड़ा हिमालय
पूछा, 'बेटी गंगा, बोलो
यह कोलाहल कैसा है री,
भरतखण्ड की पुण्य धरा पर ?'
खड़ा हुआ हूँ मैं पहरे पर
फिर दुश्मन ने धूल झोंककर
मेरे दृग में,
भला किधर से
धावा बोला ?'
बोली गंगा आँसू भरकर,
'पिता, न पूछो इसका उत्तर।
किसकी हिम्मत !
तुम्हें लाँघकर
करता हमला, पुण्य धरा पर!
पर घर की ही फूट बुरी है
बंग धरा पर भाई-भाई
लड़ते बनकर क्रूर कसाई
भूल मनुजता पशुता के वश
जालिम बनकर, पागल बनकर
उन ने यह आवाज लगाई
'पाकिस्तान जिन्दाबाद !'

पाक हो गई धरती दबकर
अपने ही बेटों के शव से !

पाक हो गई शस्य-श्यामला
अपने ही शोणित के स्रव से ?
भला बताओ किससे सीखा
पाक शब्द का मतलब तुमने
कौन धर्म के बन अनुयायी
यह पैशाचिक काम किया है !
इसका उत्तर देना होगा
तुम्हें एक दिन
उसके सम्मुख
जिसका लेकर नाम युगों से—
करते आये घृणित प्रदर्शन
तुम अपनी पशुता का मानव ।
बंग धरा के मनुज मेध ने
फिर से इसको किया प्रमाणित—
"आदिम युग के मानव-पशु-से—
भी दो कदम आगे आज है
उसका वंशज बर्बरता में ?"

उन अनजानों, उन अन्धों को
ईश-कोप से, दण्ड-दोप से
चला बचाने
एक अठत्तर बरसों वाला
मांसहीन हड्डी का ढाँचा
चला उठाने
अपने सिर पर
उनके ही पापों का गट्ठर
लेकर लकड़ी, डगमग पग धर
नोआखाली, वर्धा तजकर

अगर अभी भी लाज तुम्हें कुछ
अरे हिन्दुओ ! अरे मुस्लिमो !
गले मिलो फिर
जिससे कुछ दिन
और रह सके
जिन्दा वह जन
जिसके अगणित उपकारों का
मोल कहाँ है पास तुम्हारे !

गृह-युद्ध

क्यों फैलाते आग ?
सह न सकोगे इसकी ज्वाला
इसके अनमिट दाग,
क्यों उकसाते छेड़-छेड़कर
ये लपटें विकराल ?
ठहर, घृणा का घृत न होम तू
अन्धे होश संभाल,
ऊपर तेरे छत तृण की है
इसका ही कर खयाल,
मान लिया इसकी लपटों में
मर जायेंगे व्याल।
झुलस जायँगे मच्छर, खटमल
पर क्या आगे हाल ?
राख बनेगा तेरे हाथों
तेरा ही निर्माण;
आज क्षुद्रता चले जीतने
बनकर तुम पाषाण,
अह, कितना यह पतन तुम्हारा

ओ मानव नादान !
"ज्योति रचेगी अपने हाथों
तम का सफल विधान ?"
तुम कहते हो आज डंक का
बदला होगा डंक ?
भला शून्य की परिधि बढ़ाने
स्वयं मिटेगा अंक ?
बुझ न सकेगी खूब सोच लो
कभी आग से आग,
इष्ट तुम्हें जो आग बुझाना
सींचो जल का भाग,
तुम कहते आदर्शवाद की
बातें हैं सब व्यर्थ,
पशुता के बदले पशुता ही
केवल मात्र समर्थ,
तब क्यों लेते ओट धर्म की
ओ पाखंडी, बोल ?
प्रतिहिंसा तो स्वार्थ-साधना
का ही केवल तोल,
भला स्वर्ग का इच्छुक सकता
खोल नरक का द्वार,
आज साथ अपनी आत्मा के
करते तुम व्यभिचार,
युग-युग की संस्कृतियों का तुम
चाह रहे हो ध्वंस ?

तो अपने ही आप कर रहे
तुम रे अपना व्यंग्य
मनुज मर गया तेरे उर का
बाकी बचा भुजंग ।

जादूगर[1]

तुम अशक्त हो या सशक्त हो
संशय जग को घेरे।

जो पर के अपराधों बदले
निज को दण्डित करता,
यह उसकी निर्बलता है, या
उसके बल की क्षमता ?

साधारण जन समझ न पाते
तौर-तरीके तेरे।

थप्पड़ के बदले थप्पड़ ही
(बाहर की आँखों से मन को)
जँचता है स्वाभाविक,
पर तुम तो भीतर के दृग से
करते अवगाहन भाविक,

जो कुछ दिखता अंश सत्य

---

१. बापू के शेष उपवास पर लिखित

तुम पूर्ण सत्य के चेरे।

शीतल मन्द समीरण से तुम
पत्थर को पिघलाते,
लाल धधकते अंगारों से
निर्मल नीर बहाते,

ये करतब तुम ही कर सकते
ओ जादूगर मेरे !

जनता के पाषाणी उर में
जो करुणा का कोना,
तुम्हें ज्ञात है, छू देते तुम
हो जाता अनहोना,

तुम वैज्ञानिक आत्म जगत् के
जब तब जन मन फेरे।

मानव के अन्तर पर अंकित
मानवता की छाया,
जब-जब धुंधली पड़ती तू ही
लिए तूलिका आया,

फिर सजीव करता उस छवि को
दे निज रक्त, चितेरे !

तुम अशक्त हो या सशक्त हो
संशय जग को घेरे।

बापू

बापू ! युग के अन्धकार में
तुम आशा की एक किरण हो ।
पशुता की आँधी में कितने
बड़े-बड़े तरु टूट गिर गये,
क्या बिसात थी रज के कण की
नगपति अपनी दिशा फिर गये,
पर नन्ही-सी दीन दूब के तुम भी जैसे जमे चरण हो ।

नयन नीड़ में रहने वाली
करुणा का आवास छुट गया,
निष्ठुरता के विषम व्याल से
त्रस्त दया का विहग उड़ गया,
भीत काँपती मानवता के एकमात्र अवलम्ब शरण हो ।

आज शेष की फुंकारों से
तेरा अमर अशेष भिड़ गया,
आज अन्त का पुनः आदि से
घोर कठिन संग्राम छिड़ गया,
जग देखे फिर नये सिरे से जीवन की जय विजित मरण हो ।

अभी-अभी दो सांड लड़े
इसकी ही कोमल छाती पर
मजबूत खुरों ने पशुता के
किस बेरहमी से कुचला था
इसके मासूम कलेजे को ?
फिर भी न हुई
यह छुईमुई
सरसब्ज़ रही
जैसे न कहीं कुछ बात हुई
यह हरी दूब
मनभरी दूब ।
कितने ही आंधी झंझा भी
आते
बरगद पीपल के पेड़ बड़े
पल भर न खड़े रह पाते
गिर जाते
पर यह विनीत
सब सहती
क्या कुछ कहती ?
स्वयं हार कर जाते
तीखे नोकीले कांटों वाली झाड़ें
जहां हवा भी जाने में करती है आनाकानी
वहीं, उसकी ही छाती के नीचे
बच रह जाती
मृदु मुसकाती
जब झुलसाती
लूएँ चलतीं
करतीं धरती को जैसे बन्ध्या ।

यह हरी दूब
मुश्किल न इसे
पर्वत की चोटी पर चढ़ना
यह हरी दूब
आसान इसे मरुथल की छाती पर उगना
इससे न छिपा
यह जान गई
जीवन का रहस अनोखा जो
यह समझ गई
जीवन की इच्छा वह ताकत
जिसका मुकाबिला करने में
कमज़ोर मौत घबराती है।

बादशाह खान

तुम पिंजड़े में बन्द
तुम्हारी हथकड़ियों की झन-झन,
रावी के इस पार सुनाई
पड़ती हमको क्षण-क्षण

पर हम हैं लाचार
देह के आधे खण्डित टुकड़े
हिल-डुल सकते नहीं
विवश हैं, सीमाओं में जकड़े

मां के बन्धन तोड़े
उसके बदले में यह पीड़न ?
इससे ज्यादा और भला क्या
इज्ज़त करते हम जन ?

जिसने हिंस्र पठानों को भी
हिंसा विमुख कराया,

शत्रु मित्र ने माना जिसको
बापू की प्रतिछाया,

उससे भीत कायदे आज़म
तो न वहम की औषध ?
घोंट सत्य का गला न होगा
पाकिस्तान निरापद।

एटम बम

आज मौत का स्वामी मानव !
बन न सका जीवन का दाता
तो खिसियाकर, चिढ़-झुंझलाकर
उसका पीड़ित अहम गरजकर
बोला, ओ अभिमानी जीवन !
तुमने मेरे अधिकारों की
सीमा बनकर मुझ पर मेरी
लघुताओं को प्रकट किया है
यह मेरा अपमान भयंकर।
इसका बदला लिए बिना मैं
एक मिनट भी चैन न लूंगा
याद करोगे तुम भी जिससे
किसी मर्द से टांग अड़ाई !
और तभी से
मानी मानव
महा मौत का प्रणयी बनकर
साधक बनकर, प्रेमी बनकर
निशि-दिन उसके साथ विचरकर

नित नवीन यन्त्रों को रचकर
हँसा-हँसाकर, रिझा-रिझाकर
तृप्त किया करता था उसके
उदरानल की भूख भयंकर
प्रियतम की इस अनुकम्पा से
प्रिये मौत ने पुलकित होकर
एक किसी दिन अशुभ घड़ी में
जन्म दिया उस नन्हे शिशु को
जिसकी पहली ही किलकारी
हिरोशिमा में सुनकर सहसा
बर्फ़ बन गया बहता जीवन।

जनमत चिकने पात कहावत
सिद्ध हो गई विहँसा मानव
धूमधाम से फिर उस शिशु का
एटम बम यह नामकरण कर
ऊँचा सिर कर
देखा उसने
बड़े गर्व से भू-अम्बर पर

किन्तु अचानक क्या जाने क्या
हुआ कि ऐसा उसे लगा ज्यों
हो जायेगी जब तब में ही
बन्द हृदय की परिचित धड़कन।

माउण्टबैटन

शोषक की निर्दयता भूले
शोषित जिसके कारण,
वह परदेशी तू था जिसने
टूटे जोड़े दो मन

याद मुझे वह पोज तुम्हारा
अखबारों में देखा,
राष्ट्रपिता का दाह देखते
मुख पर दुख की रेखा

राजघाट में साथ सभी के
बैठे थे तुम भू पर,
भारत की संस्कृति के प्रति था
भाव-भरा यह आदर

उस दिन से ही और अधिक तुम
हुए हृदय के वासी

आज तुम्हारी विदा घड़ी में
सचमुच हिन्द उदासी

तुम्हें न विसरा होगा शायद
वापू का मुसकाना !
दो गुलाव के वीच शुष्क-सा
मैं कांटा वेगाना,
तुम दोनों ही पति-पत्नी का
था सौभाग्य निराला,
विश्व-पुरुष से स्नेह हृदय का
सहसा इस मिस ढाला

जाग रही है आज न जाने
कितनी स्मृतियां सोईं ?
किन्तु रहा है सव दिन किस के
कव परदेशी कोई ?

मौन क्रान्ति

जब अगस्त में
अंगरेज़ों ने
अपना डेरा-डंडा लेकर
कूच किया तब
भारत भू की
गंगा-जमुनी छाती ऊपर
छह सौ कब्रें थी मुर्दों की
इतने ही थे प्रेत वहां जो
उन मुर्दों को जिला-जिला कर
हँसा-हँसाकर, रुला-रुलाकर
महामौत का ताण्डव करते
मधु मदिरा के प्याले भरते
अट्टहास कर जग को कहते
किस की ताकत इन कब्रों से
दूर करे अधिकार हमारा ?
इन मुर्दों के हम स्वामी हैं
इनकी बोटी नोच-नोचकर
हम खायेंगे, पेट भरेंगे

नहीं हिजड़े जो हम झटपट
भेड़-बकरियां बन जायेंगे
इन्क़लाब के नारे से डर

इन भूतों की डींगें सुनकर
वल्लभभाई घाघ पुराना जो जादूगर
मुसकाता था मन के अन्दर
और फिरंगी चर्चिल जैसे
खुश होते थे सोच-सोचकर
सफल हो गई चाल हमारी
दो टुकड़े हमनें कर डाले
बाकी के फिर अगणित टुकड़े
कर डालेंगे प्रेत हमारे
जिनको अपनी माया से रच
हम आये हैं छोड़ पिछाड़ी—
पर पटेल की जर्जर झोली
में से निकला जादूवाला
वह डंडा बस जिसको छूते
प्रेत बन गये फिर से मानव
और मची कब्रों में हलचल
जाग उठा जीवन मुर्दों में
बदल गया पलकों के झँपते
हिन्द देश का सारा नक्शा,
पीले-पीले जो चकते थे
सड़ी कोढ़ के पीब भरे-से
शेष हो गये छूमन्तर से
अँग ढँप गये स्वस्थ चर्म से
हुई राष्ट्र की देह निरोगी।

अपहृत नारी

अह दुखियारी
अपहृत नारी
जीवन भारी
दृग अँधियारी
छूटा नाता
बिछुड़े परिजन
माँ से बेटी
पति से पत्नी
उर-उर उठता
करुणा क्रन्दन
बोलो, मानव !
क्या तुम पशु से
ज्यादा गुजरे, ज्यादा बीते ?
यह सब करते
क्या तुम अपने
दिल को रखकर
और कहीं क्या
ऊँचे गिरि पर ?

जिससे उसकी
कोमल धड़कन
बाधा बनकर
तुम्हें न रोके
कर पाओ तुम
निश्चित होकर
इन हैवानी करतूतों को
बोलो, मानव !
क्या न तुम्हारे
माँ-बेटी है !
क्या न तुम्हारे
प्यारी पत्नी !
करो कल्पना
यह सब विपदा
यदि कोई दिन
उन पर टूटे
तुम जिन्दे भी
मर जाओगे
क्या न सत्य यह ?
बोलो, मानव !
अपना अन्तर् ज्ञान
टटोलो
अपनी मूंदी
आँखें खोलो
अपहृत नारी
वह कालिख है
देश-धर्म के
जाति-व्यक्ति के

मुख पर जिसको
प्रलय क़यामत
दोनों मिलकर
अपनी सारी
ताकत क्षय कर
धो न सकेंगे
खो न सकेंगे
वह लोहू की लीक बनेगी
इतिहासों के पन्ने-पन्ने
चीख-चीखकर सदा कहेंगे
आगे आनेवाली पीढ़ी
दर पीढ़ी को—
तुम संतति हो
उन पशुओं की
जो पशुता की सीमाओं को
लाँघ गये थे
फाँद गये थे
जिनने अपनी माँ-बेटी को
गाय-भैंस से ज्यादा बदतर
सिर्फ मांस का मात्र लोथड़ा
ऐसा क्रूर सलूक किया था
जिससे उनके बेटे-पोते
तुम अपना सिर ऊँचा करके
चल न सको दुनिया के अन्दर।
अपहृत नारी
वह विष खारी
जो कि तुम्हारी वंश-बेल को
मुरझा देगी

बिखरा देगी
पलक मारते तुम भूलोगे
किसे पनपना कहते हैं फिर
उनकी आहें
उनकी दाहें
झुलसा देंगी
बची-खुची जो मानवता है
अगर कहीं इस जग में बाकी
इस में कुछ भी
राई रत्ती
फ़र्क नहीं है
सोलह आने
सच मानो तुम
अब भी इसको
कवि की कोरी
बहक समझकर
यदि हँसते हो
मुसकाते हो
तो तुम अन्धे
तो तुम पागल
तुम मख़ौल में
काट रहे हो
अपने हाथों
अपने ही पग।
ठोकर खाकर
अब भी सीखो
इज्जत करना
नैतिकता के उन नियमों की

उस बुड्ढे गांधी के आगे ?
यह एक सवाल हुआ उनको
जो हठधर्मी जड़वादी थे
कह अनेकान्त को गप्प निरी
एकान्त दृष्टि के हामी थे,
यह एक चुनौती थी उनको
जो वस्तुवाद की सीमा से
आगे भी जीवन की सत्ता
इस सत्य चिरन्तन शाश्वत पर
कर व्यंग्य फब्तियां कसते थे,
वह एक प्रहार हुआ उन पर
जो बदला करते थे जब-तब
बस सुविधा के अनुकूल सदा
निज नैतिकता की परिभाषा,
इस एक सत्य के धक्के से
शोणित औ' आंसू में डूबे
पश्चिम की आंखों ने देखा
पूरब है जीवन का दाता,
अन्दरूनी बल की तुलना में
बाहर की ताक़त ना कुछ है
सन्देश अमर वह बापू का
कमजोर निहत्थे मानव को
युग-युग तक सदा बँधायेगा
असुरों से लड़ने की हिम्मत ।
कुछ अन्धे अब भी कहते हैं
स्वराज्य अहिंसा से न मिला
यह तो थी केवल ऐसी ही
कुछ परिस्थितियों की मजबूरी,

पर भला कभी तारीखों में
क्या एक उदाहरण मिल सकता
जब कभी किसी ने लड़े बिना
तिल भर भी धरती छोड़ी हो
बाधित हो कोई कारण से ?
यह आत्म-प्रेरणा थी केवल
जिसने कि अनैतिक शासक के
उर में कर जागृत नैतिकता
करने को न्याय किया प्रेरित ।
क्या याद नहीं कुछ दिन पहले
जब जापानी विजयी फौजें
भारत की सरहद पर पहुंचीं
तब चन्द उताले प्रतिहिंसक
बापू से बोले, मौका है
अब सत्याग्रह कर करने का
इस ब्रिटिश राज का उच्छेदन ।
उस समय कहा जो बापू ने
वह एक चीज़, उसको केवल
बस बापू ही कह सकते थे—
"अब आज विवशता के क्षण में
हम ब्रिटिश सिंह को तंग करें
है इसका मतलब हम अपनी
आत्मा का हनन करें पहले ।"
बस एक सबूत यही काफी
उन तर्कों के प्रत्युत्तर में
अब वे ही आंखें मूंदेंगे
जो अन्धकार के आदी हैं

पर भला कभी तारीखों में
क्या एक उदाहरण मिल सकता
जब कभी किसी ने लड़े बिना
तिल भर भी धरती छोड़ी हो
बाधित हो कोई कारण से ?
यह आत्म-प्रेरणा थी केवल
जिसने कि अनैतिक शासक के
उर में कर जागृत नैतिकता
करने को न्याय किया प्रेरित।
क्या याद नहीं कुछ दिन पहले
जब जापानी विजयी फौजें
भारत की सरहद पर पहुंचीं
तब चन्द उताले प्रतिहिंसक
बापू से बोले, मौका है
अब सत्याग्रह कर करने का
इस ब्रिटिश राज का उच्छेदन।
उस समय कहा जो बापू ने
वह एक चीज़, उसको केवल
बस बापू ही कह सकते थे—
"अब आज विवशता के क्षण में
हम ब्रिटिश सिंह को तंग करें
है इसका मतलब हम अपनी
आत्मा का हनन करें पहले।"
बस एक सबूत यही काफी
उन तर्कों के प्रत्युत्तर में
अब वे ही आंखें मूंदेंगे
जो अन्धकार के आदी हैं

उस पुण्य दिवस की आज तिथि
फिर एक बरस के बाद फिरी
पर आज ख़ुशी के साथ-साथ
आंखों में आंसू-सरि उमड़ी,
वह नहीं रहा जिसके बल पर
यह दिवस देखना हमें मिला
वह गरलपान कर जा सोया
अमृत के हमको घूंट पिला।

विश्वपुरुष का विश्वकवि से मिलन[1]

चलकर आया
कर्म कला के पास,
उभरी रगें
कलूटी चमड़ी
चरण काँपते
किन्तु अंगुलियाँ
पकड़े धरती,
कर में लाठी
नंगे घुटने
पिचका पेट
रोममय छाती
अधरों पर
निश्चय की रेखा
श्रम की बूंदें
घनी भँवों पर
कला न सिहरी

---

1. गांधी-रवीन्द्र मिलन

देख कर्म को
चौड़ा भाल
हेम-सी काया
तीखी नाक
भावमय चितवन
हिम-सी उज्ज्वल
कोमल दाढ़ी
वस्त्र मनोरम
स्वर कवितामय
दो डग आगे
बढ़कर बांधा
कर्म कठिन को
भुज-बन्धन में
धरा-स्वर्ग का
सत्य-स्वप्न का
मिलन हुआ यह
धन्य हो गया
वह क्षण सब दिन,
कहा कर्म ने—
कला श्रेष्ठ है
कहा कला ने—
कर्म श्रेष्ठ है
और श्रेष्ठ था
बिन्दु जहाँ पर
एक हो गईं
दो धाराएँ।

मन्दिर-मस्जिद

एक गली में पास-पास थे
मन्दिर, मस्जिद साथ,
किन्तु एक दिन लगे चलाने
हिन्दू मुस्लिम हाथ

मुसलमान ने किया तोड़कर
मन्दिर को बेहाल,
हिन्दू ने कर धावा फोड़ी
मस्जिद की दीवाल

बिखर गई दोनों की ईंटें
दोनों के भगवान,
मलबे के नीचे दब बैठे
राम कृष्ण रहमान।

कुछ दिन बाद पड़ी जब ठंडी
वैरभाव की आग,
हिन्दू मुस्लिम दोनों आये
बनवाने निज भाग

पर मन्दिर-मस्जिद की ईंटें
बिखर हो गईं एक
रह न सकीं वे अलग, नहीं था
उनमें मनुज-विवेक !

कौन ईंट मन्दिर मस्जिद की
मुश्किल था अन्दाज ?
हिन्दू-मुस्लिम दोनों बहरे
सुन न सके आवाज़ !

बापू

बापू तुम आत्मा केवल !

पंच तत्त्व तो गौण
ज्यों बाती तल दीपक
कब डँस सकता ज्योति
अन्धकार का तक्षक
तुम ऐसे पन्थी, पथ ही जिसके चलने का सम्बल।
कब अनन्त रह सकता
बँध मिट्टी में सीमित !
मिट्टी स्वयं असीम
तुम से है सस्मित
है कोटि कोटि प्राणों में बिखरा तेरे प्राणों का मृदुबल।
भौतिकता युग वाद
किन्तु तुम युग से ऊपर
तुम अध्यात्म के शतदल
कब छूता कर्दममय सर ?
नमस्कार शत बार पिया जगहित शिव सम हालाहल।

बापू तुम आत्मा केवल !

मेरा युग

समय दुहराता है

हुआ स्वतन्त्र ब्रह्मदेश
टूटी युग-युग की कारा
बही जीवन की धारा,
बड़ी प्रतीक्षा बाद आज
मंगल की वेला आई
मुक्त हुआ ब्रह्मदेश
भारत का छोटा भाई
फिर गूंजा नारा
'ग्रेटर बामा' ब्रह्मा महान।
चार जनवरी उन्नीस सौ उनंचास
मुक्ति पर्व की पुण्य तिथि यह

इस उत्सव में, आयोजन में
सम्मिलित होने भारत भू ने
भेजा अपना पुत्र लाड़ला
बिहाररत्न राजेन्द्रप्रसाद
और भेंट साथ में भेजी
युग के बुद्ध
बापू की वाणी

कल्याणी
बोधि वृक्ष का बिरवा
गंगाजल का एक घड़ा।

कवि की आँखें लग वांचने
पृष्ठ उलट कर इतिहासों के,
दो हजार बरस का अन्तर
बन न सका पल भर भी बाधक
बुद्ध भिक्खुणी
राजकुमारी सुकुमारी
बहिन संघमित्रा—
देवानुप्रिय नृप अशोक की
त्याग पाटलिपुत्र प्रासादों को
लेकर दक्षिण सागर
पहुंची लंका तट पर
साथ लिये अनागत की वाणी
कल्याणी
बोधि वृक्ष का बिरवा
और भरा घट गंगाजल का।

रोपा भारत की संस्कृति को
लंका की धरती पर
हुआ तुमुल हर्षनाद
गूंजा लंका के जन-जन के
कंठों से एक साथ—
"बुद्धं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि"
समय दुहराता है
मनुष्य के पुण्य पाप
समय दुहराता है...

वापू का पत्र

वापू !
मेरे हाथों में
तुम छोड़ गये
अपने हाथों
से लिखा हुआ नन्हा कागज,
तुम
चलते-चलते
सौंप गये
मुझ निर्धन को ऐसी थाती
जिसके अक्षर-अक्षर पर
मैं न्यौछावर कर सकता हूं
जीवन के सुन्दरतम सपने,
वह पाँच जून
सन् सैंतालिस की अमर तिथि
आई मेरे
किन पूर्व जन्म के पुण्यों से
जव देव तुम्हारी कलम चली
मुझको कर सम्वोधित लिखने !

उस क्षण से ही मैं
अपने को
सचमुच में अमर समझ बैठा
अब मुझे काल का
क्या डर है
जब पास सुधा का घट मेरे ।

अस्थि-प्रवाह

क्या न कोसता होगा कहकर
अमृत भी तकदीर !
मुझसे हुई कीमती तेरे
तन की राख फकीर।
शीश धुन रहा होगा अमरण
देख मरण का मान !
बापू की सी मौत तरसते
होंगे श्री भगवान !
कोटि कोटि के उर में चित्रित
देख एक तसवीर,
रूप रो रहा मुझ से भी बढ़
जर्जर एक शरीर।
मिली अस्थियां मुझे न पहले
सागर सोच अधीर,
व्यर्थ नाम रत्नाकर मेरा
धन्य त्रिवेणी तीर।
व्यंग्य कर रहा अपने पर ही
सागर का विस्तार,

समा न पाते लौट आ रहे
वापू के जयकार,
तू अभेद्य है कैसे हिमचल
नीचा कर ले शीश,
तुम्हें लांघ कर पहुंची जग में
वापू की आशीश।
नहीं दूर तक गई गिरी जो
एटम वम की गाज
सिद्ध किया वापू ने ऊंची
मानव की आवाज।

काल रात

धरती धसकी अम्बर खिसका
फन हुआ शेष का डगमग डग
वह अचल हिमाचल सहम गया
लड़खड़ा गिरे दो दुर्बल पग।

अम्बर से सूरज झिझक गिरा
कह कौन पाप की साख भरे ?
बस इधर हो गये बापूजी
कह राम राम चिर मौन अरे !

क्या मानव था इसमें संशय
वह राष्ट्रपिता का हत्यारा ?
ये नयन देख लें अनहोनी
रुक जा री आंसू की धारा !

कितने राज्यों की कब्र बनी
सुनते थे दिल्ली डाकिन है

पर यह कलंक सबसे बढ़कर
सचमुच दिल्ली हतभागिन है।

जो गये अठहत्तर बरसों से
निर्धूम दीप-सा जलता था
इस घोर तमिस्रा हिंसा में
जीवन को सम्बल मिलता था।

कि सहसा कोई अन्धे को
जग की आंखों से डाह हुई
दी पलक मारते कुचल शिखा
चरणों को अन्धी राह हुई।

उस पलक लगा जैसे पशुता
प्रिय मानवता को जीत गई!
उस पलक लगा फणि की जिह्वा
अमृत के सागर रीत गई!

बस अन्धकार चिर अन्धकार
अब व्यर्थ उजाले की आशा!
जब काल रात ही घिर आई
जीवन की कैसी अभिलाषा?

तारों में अम्बर रोता था
आंसू में मानव रोता था
बिड़ला के घर के कमरे में
वह सजग प्रहरी सोता था

पर पूरब में रवि फिर जागा
बापू के उर की जोत लिये
क्या बिसात क्या हिम्मत जो
उस प्रभा-पुंज को मौत पिये।

जो बँधी हुई-सी अब तक थी
बापू की डेढ़ पसलियों में ?
वह ज्योति बिखरकर फैल गई
संकीर्ण मनों की गलियों में।

मोहन प्यारे मोहन की
दर्शन की अन्तिम जान बड़ी,
बस वेश बनाकर जनता का
चुपचाप कालिन्दी उमड़ पड़ी।

बापू बिहँसे, तू क्यों आई
मैं स्वयं वहां चल आऊंगा।
सोऊंगा तेरे तट पर ही
अब और नहीं ललचाऊंगा।

मैं छोड़ गया था द्वापर में
कलियुग में केवल आने को,
'युग युग में सम्भव होऊंगा'
गीता का वचन निभाने को

जा, लौट चली जा, आता हूं
अब और नहीं कुछ काम यहाँ

खेलूंगा तेरी लहरों से
होगा चिर दिन विश्राम वहां !

ग्यारह का घंटा बजते ही
बापू की अर्थी चल निकली,
पीछे थी जनता की यमुना
आगे भी यमुना थी पगली ।

चन्दन की नीचे सेज बिछा
युगपुरुष सदा को जा सोया,
इतिहास कहेगा रो-रोकर
अनमोल गया हीरा खोया ।

संशय है इसमें आगे की
पीढ़ी विश्वास करेगी भी ?
यह रक्त-मांस में सम्भव है
इसको चिर सत्य कहेगी भी ?

पर रक्त-मांस में सम्भव है
यदि नीच गोडसे हत्यारा ?
तो धड़क कहेगी मानवता
निश्चय था बापू-सा प्यारा ।

और एक दिन मुक्त हवा में
आकर वह बोलेगी सचमुच
ओ पंडित, ओ काजी सुन ले—
जो मानव मानव को बांटे
वह तेरा भगवान गलत है !

ताजमहल

श्रम की बूंदों का ढेर ताज
बन गया अश्रु की बूंद एक !
कितनों के दुर्दिन का फेर ताज
बन गया किसी की प्रेम रेख !

यह दो प्रणयों की मिलन गांठ
कितने प्रणयों का क्रूर शाप ?
यह मरमर का धवल कफन
कवि की आंखों में मूर्त पाप ।

शासक की स्वेच्छा का प्रतीक
यह भूतकाल का भीम व्याल,
गरलित करता है वर्तमान
गुम्बद-सा इसका फन विशाल ।

यह राजदण्ड की छांह पलित
निर्बन्ध कला का एक दाग,

युग-युग से शोषित जीवन के
अधरों से टपका मृत्यु झाग।

वे कलाकार वे चित्रकार
उनकी वधुओं का विरह ताप
इस ताजमहल की मीनारें
क्या कभी सकेंगी बोल माप ?

वे भिन्न प्रान्त के भिन्न लोक
वे भिन्न वेश भाषा विशेष,
जब मिला शाह का परवाना
थे विवश छोड़ने को स्वदेश।

वे कोपभीत, बन मोहजीत
रति-सी नारी को गये त्याग
थी प्रथम रात ही अन्त मिलन
जीवित ही मृतवत कर सुहाग।

फिर सौंपा गुम्बद को उन ने
उन सुघड़ उरोजों का उभार
जिनकी सुधि से सिहर-सिहर
झरते थे लोचन बार-बार।

वे शिल्पकार हो मर्माहत
पत्थर पर उर को आंक-आंक,
कर गये बन्द रेखाओं में
सपने के खग की चटुल पांख।

यह एक सनक शासक मन की
पशुता का कितना घृणित ढंग ?

यह अधिकारों का दुरुपयोग
यह एक व्यक्ति का अहमवाद,
यह ताजमहल इसकी जड़ में
कितनी कुटियों का विषाद ?

युगपुरुष

रक्त-मांस में हुआ न विकसित
अब तक ऐसा प्राण !

मानव के हाथों में रक्षित
है जितना इतिहास,
युग ने सौंपा एक व्यक्ति को
कब इतना विश्वास !

सहसा उतरा व्योम त्याग कर
धरती पर भगवान् ।

जीत रहा है घृणा द्वेष को
—दो नयनों का प्यार,
एक क्षीण जर्जर के आगे
रोती है तलवार,

मोम बन गये बापू तुम को
छू कितने पाषाण !

प्राणों के रहते एक मरण

सुनकर बापू का दुखद निधन
निकल नहीं पाये आंसू
जम गये हृदय में पत्थर बन
सुनकर बापू का दुखद निधन।
दुख की भी सीमा होती है
सीमा से आगे बढ़ जाये
वह दुख काहे का, वह तो है
प्राणों के रहते एक मरण,
तम की भी सीमा होती है
सीमा से आगे बढ़ जाये
वह कालकूट जिसके आगे
जीवन के चिह्न नहीं दिखते,
यदि कोई निर्बल रो-धोकर
उस दुख को व्यक्त किया चाहे
तो कहना होगा यही विवश
उस दुख की गहन अमरता को
वह दुर्बल प्राण न गह पाया।

दुख करना सीखो धरती से
जिसने अपनी ही छाती पर
बापू के शव को जलवाया
दुख करना सीखो यमुना से
चुपचाप रही जो बहती ही
ले अपनी विह्वल लहरों को
आत्मा पर चोट लगेगी जो
उसकी प्रतिध्वनि कब होती है ?
आत्मा कोई पाषाण नहीं
जो चोट लगे पर बोलेगी ?
बस एक मौन ही साधन है
जिससे वह व्यक्त किया करती
जब-तब अपनी अनुभूति विमल ।

बन जाते थे भीगी बिल्ली
कर सलाम धरती तक झुककर
मन ही मन थे ख़ैर मनाते
"सही सलामत घर पहुंचे तो
फलां पीर के फलां मकबरे
पर बांटेंगे गुड़-रेवड़ियाँ।"
और कि वह था एक जमाना !
और कि अब है एक जमाना !
उन महलों में, उद्यानों में
अब भी रहता एक आदमी
और गवर्नर जनरल का ही
उसका भी है डैजिगनेशन
किन्तु कहां वह शान निरर्थक—
जो कि घृणा पर थी अवलम्बित ?
पर उसके बदले में वह है
जनता का ही एक आदमी
जनता की इच्छा का सेवक
औसत जन-सा रहन-सहन है
नंगे सिर खद्दर का कुर्त्ता
कन्धे पर मोटी-सी चादर
पर जिसकी आंखों का जादू
एनक के रंगीन कलर से
पढ़ लेता दुनिया के दिल को।
और पोपले मुख पर जिसके
हंसी हमेशा दौड़ा करती
ज्यों पोखर के जल में लहरें।
उसे देख सकते हैं जब-तब
बूंदा-बांदी मेंह झड़ी में

एशिया

ज्योतिमय चिन्मय चिरन्तन एशिया के देश,
मर्त्य को जिसने दिया अमरत्व का सन्देश,
घोर भीमाकारतम में ज्योति का निर्देश,
'असदो मा सद्गमय'
'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
आज भी इस आदि स्वर से झंकरित जग प्राण,
जड़ जगत को आत्मज्ञानी एशिया का दान,
सर्व भूतों में निहित जो आत्म रूप प्रकाश,
सत्य है वह, और मिथ्या विश्व का अधिवास,
वासनाओं के दमन का नाम ही है तृप्ति,
चिर तृषामय मोहमग्ना देह की आसक्ति,
बन्धनों को है निमन्त्रण कामना की चाह,
प्राण की निष्काम गति ही मुक्ति की चिर राह,
आग के बदले सलिल है आग का प्रतिकार,
है घृणा के रोग का बस प्रेम ही उपचार,
और यह थी नींव जिस पर एशिया निर्द्वन्द्व,
युग-युगों से आज तक अविचल खड़ा सानन्द,

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जिस में जीव का विज्ञान,
जल हवा में भी समाहित वेदनामय प्राण
यह अहिंसा का चरमतम भव्यतम विश्लेष,
सत्य की सम्पूर्णता का आत्मदर्शी लेख,
आज जिस अणु-शक्ति के पीछे जगत उद्भ्रान्त
विस्तरित वह जैन में अणुवाद का सिद्धान्त,
वीर प्रभु का यह प्ररूपित आदि सम्यक् धर्म,
जाति का जिसमें न बन्धन बन्ध केवल कर्म,
मुक्ति होगी जब कि होगे तुम कि द्वन्द्वातीत,
फिर न तुमको हंस सकेगा काल वैरी जीत,
लोक के जो कर्म उनको धर्म कहना भूल,
सिद्ध होंगे जब कि होंगे पुण्य भी उन्मूल,
संतुलन की श्रेष्ठतम विधि जो अपेक्षावाद,
जैन की यह देन हरती दृष्टि का उन्माद,
और भी जो धर्म जिनकी मान्यता सुविशाल,
है उन्हीं के जन्मदाता एशिया के लाल,
वह हमारा ही पड़ोसी अरबिया का देश,
था मुहम्मद ने दिया इस्लाम का सन्देश,
है ख़ुदा सबसे बड़ा ईमान तो इन्सान,
फल बुराई का बुरा है कर न बन्दे मान,
एक बद इन्सान के हजरत खड़े हो पास,
कर रहे थे बात कुछ था प्राण में उल्लास,
देख उनको उस समय बीबी हुई नाराज़,
घर गये तो क्रोध से बोली—करो कुछ लाज,
है नहीं मुझको सुहाता दुष्ट जन का साथ,
तब मुहम्मद ने कहा—सुन ले जरा-सी बात,
जो समझता दूसरे को पतित या शैतान,
तो बुरा है वह स्वयं ही सत्य लो यह जान,

है नहीं केवल अहिंसा धर्म का ही अंग,
लोक गति भी पूर्णतः है ग्रथित उसके संग,
वस्तु जग का भाव जग से है अटल सम्वन्ध,
भाव की अवहेलना का फल सदा दुख द्वन्द्व,
आत्म-दर्शन में स्वयं ही विश्व दर्शन सुप्त,
ज्यों सुमन की पांखुरी में फल सहज ही गुप्त,
साध्य से भी चिन्त्य प्रतिपल साधना का रूप,
श्रेष्ठ न हो साधना तो साध्य गर्हित कूप,
सत्य के आराधकों को मृत्यु जीवन एक,
सुख दुखों की कल्पना है मोहमय अविवेक,
सर्व धर्मों में समाहित जो चिरन्तन रूप,
वन्दना के योग्य चाहे हो न निज अनुरूप,
पूज्य वापू के न कोरे ये रहे सिद्धान्त,
किन्तु जीवन में उतारे नित्य आद्योपान्त,
आज भी जिससे चमत्कृत विश्व का इतिहास,
एक मुट्ठी धूल का वह वज्रवत् विश्वास,
त्रस्त पीड़ित नत नयन फिर आज मानव प्राण,
कर रहा अनुभव कि सकता एशिया कर त्राण।

सहनशीलता, चिर उदारता
यह न बताया तुमने फ्यूहरर !
और यही की गलती जिससे
जातिवाद का अमृत मधुमय
गरल बन गया ऐसा तीखा
जिसको पीकर मानवता की
बेल लगी मुरझाने देखा,
स्वयं मनीषी हर हिटलर तुम,
फिर क्या होगा मुझे बताना ?
तुम संतति हो उस धरती की
जिस पर जनमे गेटे-से कवि
पढ़कर जिसने कालिदास के
काव्य मनोहर शाकुन्तल को
भाव-विभोरित गद्‌गद् स्वर से
कहा विश्व को पुलकाकुल हो
स्वर्ग कहीं है यदि धरती पर
तो वह केवल कालिदास की
कृतियों के हो सकता अन्दर।
थी विशालता कितनी उर की
कभी नहीं सोचा यह उसने
यह तो कृति है काले जन की !
क्योंकि नहीं था उसको अपने
श्वेत चर्म का मिथ्या गौरव
पर इसके विपरीत आज तो
निरपराध कितने ही यहूदी
मारे जाते इसीलिए कि
आर्यजनों का रक्त न उनमें।
सचमुच कितना व्यंग्य बड़ा यह

कब्जा करने दौड़ पड़ा है
तो मुझको विश्वास न आया,
और इसी से बाधित होकर
पत्र तुम्हें यह लिखने बैठा।
पता नहीं यह मेरी वाणी
पास तुम्हारे पहुँच सकेगी ?
फिर भी मुझको अनुभव होता
सत्य मानता हूं मैं जिसको
उसको व्यक्त करूं मैं ऐसा
ईश्वर का आदेश मुझे है।
मुझे जर्मनी इतनी ही प्रिय
जितनी मुझको भारत धरती
तुम मुझको इतने ही प्यारे
जितना मुझको लाल जवाहर
क्षण भर को भी भूल न पाता
मैं जर्मन की कला चातुरी
मुग्ध भाव से देखा करता
सदा तुम्हारे उत्थानों को।
और यही था मेरा चिन्तन
अपने अतुलित साधन के बल
विश्व-शान्ति के बन रखवाले
निर्बल जन का पक्ष करेंगे
अष्ट कोटि जर्मन के वासी।
सब हिंसा के साधन रहते
जो अपने को करे नियन्त्रित
सब से बड़ी अहिंसा है वह।
और स्वस्तिका वाला झंडा
जिसको तुमने अपनाया है

निहित मिलेगा इसमें शायद
पितृदेश का मंगल तुमको।
निहित मिलेगा इसमें शायद
चिर-जीवन का सम्बल तुमको।

निहित मिलेगा इसमें शायद
पितृदेश का मंगल तुमको ।
निहित मिलेगा इसमें शायद
चिर-जीवन का सम्बल तुमको ।

निहित मिलेगा इसमें शायद
पितृदेश का मंगल तुमको ।
निहित मिलेगा इसमें शायद
चिर-जीवन का सम्बल तुमको ।

गांधीवाद

बापू !
जिस एक कल्पना से ज्यादा
भयभीत रहे तुम जीवन भर
वही कल्पना
तुम मरे कि
बन गई सत्य ।
निराधार था
नहीं तुम्हारा भय !
जिन वादों
पंथों
मठ-मस्जिद से
बंधी हुई मानवता को
मुक्ति दिलाने की खातिर
तुमने मर-खपकर
दिन-रात कर दिये एक
उसी तुम्हारे

किये-कराये पर
अब फेर रहे हैं धूल
वे ही
जिनकी जिह्वा
कभी न थकती
कहते-कहते—
"हम हैं गांधीजी के भक्त !"
और इसी भक्तों के दल ने
आदिकाल से लेकर अब तक
जितने भी धरती पर आये
बन-बनकर भगवान,
"पिला ज़हर का प्याला,
डाल गले में फांसी,
मार वक्ष में गोली,"
बना दिये पाषाण !
फिर भी दे-देकर
उनके ही
वचनों की व्यर्थ दुहाई
ये ठेकेदार कसाई
गला घोंटकर मार चुके हैं
दीन मनुज का कितनी बार विनाश !
साक्षी है इतिहास।
बापू !
तुम मरे कि हो गया
खड़ा तुम्हारे शव पर ही
वह प्रेत सरीखा 'वाद' एक
तुम रहे सदा करते विरोध

जीवन भर बेहद भय-नफरत ।
हां, बदल दिये हैं निश्चय ही
इन भक्त-ठगों की टोली ने
वे नाम रूप संकेत सभी
जिससे कि सहूलियत हो उनको
युग की श्रद्धा को ठगने में ।
वह देखो पापी मज़हब ही
जो मानवता का गर्म लहू
पी-पीकर पलता आया है
बन आज गया है 'वाद' पहन
खद्दर का एक धुला चोला ।
है 'नेता' नूतन नामकरण
उन महन्त पुजारी पंडों का
जो कुछ चांदी के टुकड़े ले
मनचाहा पुण्य दिला सकते ।
'आश्रम' हैं सचमुच रूप एक
उस मठ-मस्जिद की जड़ता का
जो व्यभिचारों के केन्द्र
नींव है जिनकी चोर-बाज़ारी पर ।
बापू !
तुम भी बच न सके
इन घृणित कमीने भक्तों की
युग-युग की क्रूर ठिठोली से ।

फिर भी है जीवित जितने दिन
नर का नारी का आकर्षण

आशा है शायद आ जाये
धरती पर कोई ऐसा जन
जो दूर कर सके चेतन के
मन में से जड़ता की ममता।

विनोवा

वापू के
मानस में
सत्यपुरुप की—
जैसी थी रूपरेखा
उसकी ही
प्रतिकृति तुम हे अभिनव !
चालीस कोटि में से
परखा,
यह थी
वापू की ही
अमित दृष्टि,
उसमें
क्या होती चूक ?
उतरे खरे
सौ टंच कनक तुम !
किसका है तुम-सा
हे समत्व वुद्धि
सुलभा अहम् ?

फिर तुमसे
कब रहता गोपन
क्या प्रकाश है
क्या है रे तम ?
"कहना सो करना"
यह कठिन तत्त्व
तुमने कर सहज उतारा
जीवन में,
साधक हे
श्रम ही जीवन की सुन्दरता
श्रम ही शिवता की सीढ़ी
तुम महाभाग
श्रम के,
आराधक हे !
तुम भारत की
चिर-विकास उन्मुख
आत्मा के
न्यायोचित
अभिव्यंजक,
तुम ज्योति-दूत
बापू की
इच्छाओं
आदेशों के वाहक !

उन्नीस सौ चालीस साल का—
वह दिन
जब व्यक्ति
सत्य का आग्रह कर

बदले—
शासन का अन्तर्मन,
यह प्रयोग
नूतनतम
करने को
कार्य रूप में परिणत
सरदार जवाहर के रहते
बापू की
खोजी आंखें
जब टिकीं तुम्हारे ऊपर
तब सहसा
भारत नभ में
तुम पूर्ण प्रभा से चमके !
कितना सुन्दर परिचय
बापू ने दिया विनोबा
तुम पुण्य-भाग हो सचमुच !

बापू के चप्पल

जब मिला राम का आमन्त्रण
थे इतनी जल्दी में उस पल,
बस वहीं धूल में छोड़ गये
बापू निज चरणों के चप्पल।

इस आकस्मिक घटनाक्रम से
जो मचा भीड़ में कोलाहल,
जब शान्त हुआ देखा जन ने
गायब थी एक चरण चप्पल।

पर एक राष्ट्र की सम्पत्ति को
कोई क्या सहज पचा सकता ?
वह राजघाट पर रख आया
है बड़ा तकाजा नैतिकता।

इस शिष्ट चोर के साहस पर
गद्गद् हो राष्ट्र कृतज्ञ हुआ,
जो रहा अपरिचित अनजाना
बस क्षण भर में सर्वज्ञ हुआ।

वापू के चप्पल

जब मिला राम का आमन्त्रण
थे इतनी जल्दी में उस पल,
बस वहीं धूल में छोड़ गये
बापू निज चरणों के चप्पल।

इस आकस्मिक घटनाक्रम से
जो मचा भीड़ में कोलाहल,
जब शान्त हुआ देखा जन ने
गायब थी एक चरण चप्पल।

पर एक राष्ट्र की सम्पत्ति को
कोई क्या सहज पचा सकता ?
वह राजघाट पर रख आया
है बड़ा तकाजा नैतिकता।

इस शिष्ट चोर के साहस पर
गद्गद् हो राष्ट्र कृतज्ञ हुआ,
जो रहा अपरिचित अनजाना
बस क्षण भर में सर्वज्ञ हुआ।

अब यही कामना शोभित हों
दिल्ली के राजसिंहासन पर,
बापू के चरणों के चप्पल
दृग देखें अपलक कालान्तर।

दो कलंक

दो कलंक अवशेष !
पोर्चूगीज और फ्रांस सरीखे
गीध कि जिनके लम्बे भद्दे
पंजों के नाखून नुकीले
गड़े हुए हैं, धंसे हुए हैं
अभी हमारे रक्त-मांस में
अभी हमारी स्वस्थ देह में
और चुनौती देते हम को
आंखें मूंदे पड़े रहो तुम
खाने दो चुपचाप मजे से
हमें तुम्हारी चर्बी-मज्जा,
अगर जरा भी चीं-चप्पड़ की
तो समझो फिर खैर नहीं है।
पुर्तगाल का जो डिक्टेटर
सालाजर है नाम कि जिसका
जो हिटलर का अन्ध नकलची

जो चर्चिल का बोदा गुर्गा
कहता है इन अधिकारों पर
आंख उठाई अगर किसी ने
तो फिर होगा बुरा नतीजा
नदी ख़ून की बह जायेगी
लाशों के अम्बार लगेंगे
और इसी बन्दरघुड़की का
थोड़ा करने अधिक प्रदर्शन
उसने भेजी है गोआ में
अपनी वह अफ़रीदी पल्टन
क्या न कट गई डेढ़ हाथ की
गोरे प्रभु की नाक इसी में ?
रंग-भेद का, जाति-भेद का
थोथा नारा क्या सीमित है
जीमनवारों; डांस-गृहों तक ?
कोई नीग्रो छू भी जाये
अगर भूल से श्वेतांगी से
लिंच किया जाता है उसको
खुले बज़ारों बेदर्दी से
देख तड़फता उसको हँसते
खूब ठठाकर मानवता के
ये रखवाले गोरे मालिक !
किन्तु यहां तो बात दूसरी
जहां मौत का हो आमन्त्रण
जहां मौत की हो आशंका;
वहां धकेल जा सकते हैं
बिना हिचक के, बिना झिझक के

ये मिट्टी के लौंदे हब्शी ?
शर्म करो कुछ मानवता की !
और तुम्हारी गीदड़-भभकी
से डर जायें ऐसी तेरी
क्या बिसात है ना कुछ भुनगे ?
किस बित्ते पर तत्ता पानी ?
जब कि तुम्हारे गुरु घंटालों
की गर्दन में बर्लिन जैसा
भारी-भरकम तोक पड़ा है !
देख तुम्हारी करतूतों को
तुम्हें जरा-सी शह देने को
आंख फेरकर मुसका भर दें
इतनी भी सामर्थ्य न उनमें
और कि ऐसे बुरे वक्त में
आह ! मेढ़की बेचारी को
सचमुच कड़ा ज़ुक़ाम हुआ है।
शायद कुछ दिन बच भी जाता
हाथी की आंखों से खरहा
पर जो इसने उछल-कूद की
अभी इधर में
जब कि हिन्द था
व्यस्त जरा-सा
उस निज़ाम से
जो रिज़वी के चंगुल में फँस
इर्द-गिर्द फिरता था उसके
बन तेली के बैल सरीखा।
गोआ ही तब बना अखाड़ा

हिन्द-विरोधी गुटबन्दी का,
होता था दिन-रात मशविरा
बढ़े हिन्द का संकट कैसे
किन्तु मुंह की खाई ऐसी
खेद, शान्ति दे यीशू उनको ।

हैदराबाद

निकला
आस्तीन का सांप,
गये समय में भांप
और नहीं तो
लेता जब-तब काट।
छह सौ या कुछ और
इसी के भाई-बन्धु छिछोर
मर गये अपनी निश्चित मौत
बचा है एक यही अब और
धरा पर नरक जागता घोर
कि जिसकी मध्ययुगीन सड़ांध
कर रही सांसों को अवरुद्ध !
मजहबी कठमुल्लों के हाथ
बिका है अन्धा दीन निज़ाम,
देखता नहीं समय की चाल
चाहता रखना पकड़ लगाम,
नहीं कुछ ज्यादा दिन की बात
इसी के आका वे अंग्रेज़

कि जिनके पास एटॉमिक बम्ब
कि जिनके पास लड़ाकू यान,
बांधकर अपने बिस्तर आप
गये फिर लौट समन्दर पार,
नहीं कुछ सहनी है आसान
कठिन है जनसत्ता की आंच,
समय के रहते अब भी चेत
नहीं तो रह जाओगे खेत
अजायबघर की होगी चीज़
पिरामिड-सा ऊंचा, बेडौल
तुम्हारा आसफ़जाही ताज !

प्रश्न

विजित हो गया हैदराबाद
खून-खराबी हुई न ज्यादा
सचमुच पात्र बधाई के हैं
नेहरूजी, सरदार पटेल
फलां फलां कर्नल जनरेल
किन्तु,
वे दस फौजी
जिनने अपना रक्त-दान कर
हिन्द देश का भाग्य बनाया
जो कि मर गये
इसीलिये कि
वतन रह सके ज़िन्दा उनका !
उनके प्रति
क्या एक शब्द भी कहा किसी ने ?
उन अनजान शहीदों का क्या
नाम कभी इतिहास लिखेगा ?
जो कि बन गये नींव
राष्ट्र के उठते हुए भवन के नीचे,

सीधा-सादा एक प्रश्न यह ?
आज विजय का दर्प दमकता
जब जन-जन की आंखों में
क्या ढूंढे भी मिल पायेगा
कोई लाखों में ?
जिसने उन अज्ञात शहीदों की
स्मृति में दो फूल
चढ़ाये हों आंसू के !

जयप्रकाश

"जयप्रकाश ज़िन्दावाद,
जयप्रकाश ज़िन्दावाद,"
एक प्रात में
इस नारे से
हुआ निनादित
राठौड़ी डण्डे से शासित
मरु के अन्तर्तम में सोया
सदियों से वालू में खोया
मृतवत
वीकानेर अचानक।
जूनागढ़[1] की
दीवारों में—
हुई परस्पर कानाफूसी
थर-थर कांपी
भय से वोली
यह अनजानी
वोली किस की ?

---

१. बीकानेर का पुराना किला।

चिर दिन परिचित
'खमा घण्यां' की
आवाज़ों के
बदले में यह।

कड़ुआ तीखा
नाद कहां से
आ टूटा है
वक्ष फाड़ कर
आसमान का ?
और गुजरता
यह जो मजमा
नहीं दीखते
इसमें वे सब
पगड़ी वाले, साफे वाले
रंग-बिरंगी वर्दी वाले
नीलम के, पन्नों के कण्ठे
गंगा-यमुनी खचित दुशाले
पर इसमें तो—
कुली कबाड़ी
मुटिये झांके
मजदूरी के धन्धे वाले
फटे चीथड़े गन्दे काले,
कल तक जिनके
होंठ बन्द थे
जीभ सटी थी
तालू से चिप
उनमें सहसा

चिर दिन परिचित
'खमा घण्यां' की
आवाज़ों के
बदले में यह ।

कड़ुआ तीखा
नाद कहां से
आ टूटा है
वक्ष फाड़ कर
आसमान का ?
और गुजरता
यह जो मजमा
नहीं दीखते
इसमें वे सब
पगड़ी वाले, साफे वाले
रंग-बिरंगी वर्दी वाले
नीलम के, पन्नों के कण्ठे
गंगा-यमुनी खचित दुशाले
पर इसमें तो—
कुली कबाड़ी
मुटिये भांके
मजदूरी के धन्धे वाले
फटे चीथड़े गन्दे काले,
कल तक जिनके
होंठ बन्द थे
जीभ सटी थी
तालू से चिप
उनमें सहसा

था राजा ही
फिर भी उसमें
क्या ताक़त थी
जान न पाया
गढ़ बेचारा !

जिससे इतनी
जनता उमड़ी
इस अदने से
ना कुछ जन का
स्वागत करने
वन्दन करने
हर्षित हो
अभिनन्दन करने

और चुनौती
उन को देने
जो डूबे थे
इस गरूर में

एक प्रदर्शन
इसका था यह
एक नमूना।
और भीड़ के चलने से जो
गर्द उड़ी बस उसमें छिपकर
कहा किले ने
धन्यवाद है
लाज बच गई
किसी तरह से।

श्री गोकुलभाई भट्ट से

तुम्हें सौगन्ध है साथी,
सिरोही के शहीदों की।
कि, जिनने दब स्वयं नीचे
तुम्हें ऊपर उठाया है।
कि, पथ के शूल चुन-चुनकर
तुम्हें आगे बढ़ाया है!
कि, उनकी सब तमन्नाएँ
किसी के कुछ इशारों पर
भला तुम ही सफल होगे?

कि प्यारी सूकड़ी का जल
हमें गंगा की धारा है !

युगों से प्रान्त की मन में
बनी तसवीर है, उसको
अरे ! सहसा बदल दोगे ?

नहीं पर तुम मसल सकते !
नहीं पर तुम कुचल सकते !
नहीं पर तुम बदल सकते !

कि जब तक भावना मन में
हमारे एक रहने की !
कि जब तक साधना जन में
मुसीबत साथ सहने की !

सिरोही

रम्य श्यामला सजल सिरोही
अर्बुद गिरि की रम्य घाटियां
अरे, तुम्हें भी छिपा गई क्या ?
नीह पुष्प थे तुम मन्दार !

और बेचारा राजस्थानी
भोग दोहरी घृणित गुलामी
भीत चकित बन गूंगा।बहरा
बलि के बकरे-सा मिमियाता
देख रहा है यह परिवर्तन !

पूंजीपति, चोटी के नेता
हो अपने मतलब से गुमसुम
हां में हां की टेर लगाकर
तय कर आये हैं यह सौदा
जैसे राजस्थान उन्हीं के
कुनबे की हो एक बपौती !

खण्डित राजस्थान

काट लिया नाक[1]
तोड़ दी रीढ़[2]
निकाल लिया बाहर
धड़कता हृदय[3]
बाकी बचे
रेत के ढेर को
बांधकर एक साथ

और बेचारा राजस्थानी
भोग दोहरी घृणित गुलामी
भीत चकित बन गूंगा।बहरा
बलि के बकरे-सा मिमियाता
देख रहा है यह परिवर्तन !
पूंजीपति, चोटी के नेता
हो अपने मतलब से गुमसुम
हां में हां की टेर लगाकर
तय कर आये हैं यह सौदा
जैसे राजस्थान उन्हीं के
कुनबे की हो एक बपौती !

खोटा पैसा

यह घिसा हुआ खोटा पैसा
नाकाम निकम्मा
इसमें विनिमय की क्या ताक़त ?
यह दिया
उस बड़ी हवेली वाली
धर्मभीरु सेठानी ने
मँहगू मेहतर को
पाखाना साफ किया
उस श्रम के बदले,
क्योंकि चल सका
नहीं और कहीं
यह खोटा पैसा।
मँहगू था उपयुक्त पात्र
वही मिला ऐसा

कुछ दूर हाट पर बनिये की
और कहा—
बाबू, मुझको
माचिस दो,
यह पैसा लो।
बनिये ने देखा पैसे को
उलट-पुलट
फिर फेंक दिया
पथ पर नीचे
और झिड़क—
कर व्यंग्य कहा—
"इसे चलाना कभी
अंधेरे में।"

बाप और बेटा

गांव, शहर का पुरखा,
जर्जर जीर्ण गलित झोंपड़ियां
जिसकी कृश पंसुलियां,
कोई कर्दम भरे सरोवर
जिसके निष्प्रभ लोचन
बरगद पीपल घने आम्र तरु
जिसकी सघन जटाएं,
बस मौन विजन में बैठा
है सोच रहा
उस युवक रसीले
बिगड़े बेटे
मूर्ख शहर की बातें,
जिसकी काली जुल्फें

वह फूंक रहा
भर एक उपेक्षा मन में,
कह, कौन उसे समझाये
"तू जिसके बल पर जीवित
वह गिनता अन्तिम सांसें
तू खड़ा हुआ है जिस पर
वह चूर हो रहा तेरे
बोझे के नीचे दबकर।

कव्वा

कव्वे का संयम कठिन वन्ध,
देखा न कभी मैथुन करते
उसको घर के छज्जों ऊपर।
वह नहीं मांगता भीख प्रणय
कव्वी से जव-तव अनुनय कर
वह स्वस्थ काम, कव रति-आतुर, ज्यों और खगी-खग काम-अन्ध।

वह देखो एक कपोत वहां
जो पंख कपोती के खुजला,
रति-भूख जगाता असमय में
मद विह्वल अपना फुला गला,
वे संज्ञाहत सम्भोग निरत, निशिवासर उनमें यौन-द्वन्द्व।

और इधर जो संयम का
दम भरते रहते नारी-नर
फिरते हैं कुत्ते-कुत्ती-से
है काम-ज्वलित उनका अन्तर
कव्वे से नीची नैतिकता, वे मरते लखकर रूप गन्ध।
कव्वे का संयम कठिन वन्ध।